अवधी लोकगीतों में स्त्री : प्रेम और परिवार का द्वन्द्व

शेषधर यादव

शोध छात्र, हिन्दी विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मोबाइल नम्बर–9451838066

ईमेल–sgbhu20@gmail.com

सारांश– सार रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी समाज की दशा और दिशा जाननी हो तो वहाँ सर्वप्रथम स्त्रियों की स्थिति देखी जानी चाहिए। उस समाज में स्त्रियाँ प्रगति करके किस दिशा में कहाँ तक पहुँच पायी हैं। उन्हें घर के भीतर और बाहर दोनों जगह अभिव्यक्ति और आवागमन की स्वतंत्रता कितनी मात्रा में प्राप्त है। जिस समाज में स्त्री को अभी भी प्रेम करने की आजादी नहीं है उसकी गतिशीलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है । वह समाज प्रगति के बावजूद अभी भी मध्यकाल में कदमताल कर रहा है। प्रेम मनुष्य जीवन का सहज हिस्सा है। उस पर पहरेदारी मनुष्यता का हनन करना है। सारी प्रगतिशीलता के बाद भी स्त्री को विवाह संस्था और परिवार व्यवस्था की आग में दिन–रात जलना ही पड़ रहा है। यह मसला कम पढ़े–लिखे लोगों के यहाँ तक ही नहीं है। वहाँ तो कुछ गनीमत भी है। अघाकर पढ़–लिख जाने और खुद को प्रगतिशील कहाने वालों के यहाँ स्थितियाँ और भी बदतर हैं।

बीज शब्द– निनरिया–नींद, बटमरवा–लम्पट व्यक्ति, पहरू–चौकीदार, होरिलवा–बच्चा, कोरवाँ–गोद, मेल्हाइ– प्रेम से, बखरिया–घर

लोक और उसके गीत–गान की पैदाइश ही तब की है, जब व्यक्तिगत कुछ नहीं था; जब किसी भी दूसरे मनुष्य के लिए हर किसी के पास अपने जैसा अपनावा था। जब कबीलों का सारा काम अपना काम था। यही लोक और लोकगीतों की उद्‌गम स्थली है। लोकगीतों में सामूहिकता और सामुदायिकता का भाव है। वहाँ वैयक्तिकता के लिए कोई जगह नहीं है। लोकगीतों के गायन के लिए किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। जिनके गायन के लिए समय विशेष के प्रतीक्षा की जरूरत नहीं होती है। यहाँ पर अवसर यानि सामाजिक परिस्थिति खुद–ब–खुद तय करती है कि हर्ष या विषाद का भाव किस तरह पगहा तोराकर, खूँटा उपाटकर किस दिशा में पदरौंके! यहाँ स्वर, श्रुति लय या ताल की भी बंदिश नहीं है। कोई द्रुत विलंबित स्थाई अंतरा कुछ भी नहीं होता है। लय होती है, यहाँ भी मात्राओं का एक क्रम होता है लेकिन शास्त्रीय संगीत की तरह किसी गणित से आंकलित नहीं होता। कोमल कोठारी लिखते हैं– ''जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में लय को कायम रखना और ताल में चलना आवश्यक है, उसी प्रकार लोक संगीत में केवल लय और मात्राओं के वजनों का ध्यान रखना ही पर्याप्त है। लोक संगीत की लयात्मक वृत्ति का मात्रिक

विभाजन ताल के मूलभूत स्वरूप की ओर संकेत करता है।''[1] शास्त्रीय संगीत और लोकगीतों में जो साझा है वह यही है।

बहुतायत गीतों को गाते समय स्त्रियाँ इतनी भाव–विभोर (तन्मय) हो जाती हैं कि लाज–लिहाज का परित्याग कर, हथौड़ी चटकाकर गाते हुए वह चहक उठती हैं। लोकगीतों को पढ़ने और सुनने के क्रम में यह पाया कि भक्ति और प्रेम विषयक गीतों में ही स्त्रियाँ इस तरह की प्रतिक्रिया करती हैं। इन पर विचार के क्रम में लोक और भक्ति साहित्य की स्थापनाओं की तरफ ध्यान अनायास ही जाता है। जहाँ पर भक्ति और प्रेम को सांसारिक जगत के तमाम भेदों से उपर उठाने वाला बताया गया है। लोक की कहावत है कि– 'प्रेम न देखै जात–कुजात' और भक्त कवियों के यहाँ मिलता है– 'जाति–पाँति देखै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।' यहाँ से देखें तो बात साफ हो जाती है कि प्रेमी और भक्त दोनों में से कुछ भी होना है तो ताज और लाज का परित्याग करना होगा। मीरा भक्ति साहित्य की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। उनके यहाँ लगभग हर दूसरे–तीसरे पद में 'कुल की मर्यादा' को छोड़ आने की बात मिलती है। सूरदास के यहाँ गोपियाँ– 'मुरली की धुनि कान परत, कुल कानि हियो तजि भाजति हैं'। भक्त कवि कबीर कहते हैं–

''कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहिं।

सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माँहि।।

प्रेम न खेती नींपजै, प्रेम न हक्ति बिकाइ।

राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ।।''[2]

बिरुरआरकर देखने से यह पता चलता है कि भारत या दुनियाभर की जो श्रेष्ठतम कलाकृतियाँ हैं उनमें प्रेम या भक्ति के भाव की प्रतिष्ठा दिखाई देती है। गँवई लोकगीतों से लगाय भारतीय मनीषा के श्रेष्ठतम चिंतन यह बात आपको मिलेगी।

भारतीय काव्यशास्त्र के रस सिद्धांत पर विचार के क्रम में भी 'रसो वै सः' और 'ब्रह्मानन्द सहोदर' बताया गया है। दरअसल प्रेम और भक्ति से मिलने वाले आनन्द की अनुभूति एक ही भावभूमि से उद्‌बुद्ध होती है। भक्त कवियों की रचनाएँ इस बात की प्रमाण हैं। जहाँ प्रेम और भक्ति दोनों मिलकर एकमेक हो जाते हैं। भक्ति का जो सर्वोत्कृष्ट रूप है वह प्रेम के मुहावरे में निर्मित और सृजित हुआ है। प्रेम की सबसे उत्कृष्ट अभिव्यक्तियाँ भक्ति के प्रतीकों का सहारा लेते हुए भक्ति के ढाँचे में ही अभिव्यक्ति पायी हैं।

पुरुषोत्तम अग्रवाल अपनी पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की' में लिखते हैं कि– ''अपने राम के प्रति प्रेम व्यक्त करने के लिए कबीर कभी–कभी अन्य सम्बन्धों– माँ–बेटा, पिता–पुत्र, स्वामी–सेवक–का सहारा भी लेते हैं। लेकिन सौ में से निन्यानबे बार तो यही होता है कि राजा राम भरतार हैं; और कबीर उनको बिरह में तड़पती,

उनकी बाट जोहती, मिलन की प्रतीक्षा करती, मिलन में भीगती–पिघलती, मिलन की मादक स्मृतियों में सिहरती– 'जोबन मैमाती नारी।' ''[3] प्रेम और भक्ति का यह सहसम्बन्ध लोकगीतों और भक्ति कविता में समान रूप से दिखाई देती है।

भारतीय समाज और परिवार व्यवस्था में स्त्री–पुरुष के मध्य जो आकर्षण जन्य प्रेम–सम्बन्ध है, उसके लिए रिक्त स्थान नहीं है या न के बराबर है। यहाँ प्रेम–सम्बन्धों को वैधानिकता, विवाह संस्था से इतर अब तक नहीं मिल पा रही है। यह बने–बनाये नियमों और सिद्धान्तों के विपरीत और बाहर पड़ता है। लोकगीतों के अध्ययन के क्रम में पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं– ''विवाह प्राकृतिक नियम नहीं है, बल्कि समाज–स्वीकृत एक प्रथा है। स्त्री–पुरुष का परस्पर आकर्षण ही प्राकृतिक है। वह आकर्षण ही विवाह का मुख्य आधार है। विवाह के नियम मनुष्यों ने बनाये हैं। प्रकृति उन नियमों के अधीन नहीं है।''[4] मनुष्य योनि की सुन्दरता यह है कि तमाम प्रयासों के बावजूद भी उसके जीवन को पूरी तरह से नियोजित नहीं किया जा सकता। अतः स्त्री–पुरुष के मध्य जो आकर्षणजन्य प्रेम सम्बन्ध है, वह वैवाहिक सम्बन्धों के समानान्तर चलता रहता है।

भारतीय समाज व्यवस्था में जो प्रेम का सम्बन्ध है, उसका व्यवहार है वह हाशिए का है। आप देखें तो पायेंगे की लोकगीतों में प्रेमी की उपस्थिति बहुत ही प्रतीकात्मक ढंग की मिलती है। प्रतीकात्मक के साथ ही साथ प्रायः निम्नवर्गीय (Subaltern) होती है। लोकगीतों में प्रेमी की उपस्थिति चोर, बटमार, छलिया के साथ ही सामाजिक वर्गीकरण में निचले पायदान से आने वाला व्यक्ति होता है। ऐसा होने के पीछे एक से अधिक कारण हो सकते हैं। मूल बात यह कि प्रेम करना ही परिवार और समाज में चोरी करना, छल करना माना जाता है। जिसे नीच कर्म समझा जाता है। लोकगीतों के सन्दर्भ से बात स्पष्ट होती जायेगी। एक लोकगीत का सन्दर्भ नीचे दिया जा रहा है–

''बेनिया डोलावत आइगै निनरिया

परिगै है सासू क नजरिया हो राम।

खाउँ न बहुवरि तोरा भैया भतिजवा

कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम।''[5]

गीत में किसी पति ने अपनी विवाहिता स्त्री को बाँस के छिलके से बनी एक पंखी चोरी से दे दी है। पंखी झलते समय किसी दिन सास की नजर उस पर पड़ गयी। सास बहू से पूछ रही है कि यह तुम्हें किस छलिया–छबीला ने दिया है। अपने भाई–भतीजे की कसम खाओ और सच–सच बताओ। यानि एक ऐसा समाज जहाँ व्यक्ति का निजत्व ही संकट में है। जीवन में छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तु भी यदि सास–ससुर के इतर किसी ने दिया है तो वह जरूर कोई प्रेमी ही होगा। सामाजिक बंदिशें इतनी ही कठोर होती हैं वैवाहिक जीवन में। एक अन्य लोकगीत उद्धृत किया जा रहा है–

''उहवाँ से चलली लाची घर के पहुँचली हो ना।

रामा सासु गरिआवे बाबा–मुअनी हो ना।।

जनि सासु बाबा खाहु जनि सासु भइआ खाहु हो ना।

सासु बटिया रोकेला बटमरवा हो ना।।''[6]

लाची नाम की एक बहू जो नदी में स्नान करने आयी थी। रास्ते में उसे लम्पट व्यक्ति मिला जिसने उसके साथ छेड़छाड़ किया। बहू को घर आने में देर हुई तो सास–ससुर तथा अन्य परिवारजनों ने इस बात को लेकर घर, सर माथे पर उठा लिया। सास उसे गालियाँ दे रही है और ससुर पिटाई कर रहा है। यानि की स्त्री की पताड़ना दो तरफा है। बाहर लम्पट व्यक्ति से मानसिक पताड़ना और सामाजिक अवमानना, घर के भीतर सास–ससुस से जो उलाहना, मार–पिटाई मिले सो अलग। विवाह संस्था पहले इतनी कठोर नहीं थी। उसमें लचीलापन था। जिसमें दो विपरीत लिंगी व्यक्ति एक–दूसरे की भावनाओं को समझते, उनका सम्मान करते एक साथ जीवन निर्वाह करते थे। विवाह संस्था तंतुमय थी। लेकिन समय के साथ इसमें कठोरता का आवरण चढ़ता गया। जबकि समाज के सभ्य होने के साथ उसकी समानुपातिकता में इसे और लचीला होना चाहिए था।

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले सोहर गीत का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है–

''कोठवा से उतरी राधिका अँगनवाँ में ठाढ़ी भई,

अँगनवाँ में ठाढ़ी भई रे।

अरे ओ मोरे रामा, हँसि हँसि पूँछहि जसोदा

काहे बहु अनमनि रे।।1।।

काह कहौं मोरी सासु कहत मोहे लाज लागइ रे।

अरे ए मोरी सासु, आजु महल मोरे चोरी भई

तिलरी चोराय गई रे।।2।।

X **X** **X**

अस जिन जान्यो कन्हैया तिलरिया लाह की है।

अरे ऐ मोरे कान्हा, तिलरी में लागो हीरा लाल,

तिलरिया हमरे बाप की है।।।8।।''[7]

सोहर घर में पुत्रजन्म के अवसर पर गाया जाता है। यह मंगल गीत है। राधा घर की छत से उतर नीचे आयी तो यशोदा पूछ रही हैं कि बहु तुम अन्यमनस्क क्यों हो। जवाब मिलता है आज मेरे महल में चोरी हुई और कोई मेरी तिलरी चुरा ले गया। यशोदा सीख दे रही हैं कि हाथ–पैर के कड़े तोड़ डालो और तुम भी मुरली चुरा लाओ। बात को गौर से समझने का प्रयास करें तो साफ–साफ दिखाई देता है। प्रेम की व्यंजना को भक्ति के बेसन में लपेटकर बात कही जा रही है। मामला किसी उच्च कुलीन घराने का है। जहाँ स्त्रियों के पैर में पड़ी जंजीरें अकाट्य हो गयी हैं। जहाँ स्त्री का प्रेमी रात के अँधेरे में दबे पाँव आता है। बात सार्वजनिक हुई तो घर–परिवार की बदनामी का खतरा बढ़ जायेगा। इसलिए प्रेम को भक्ति की चासनी में डुबोया जा रहा है। यहाँ प्रेमी को आराध्य देवता के रूप में पेश किया जा रहा है। जिससे बात दबी–छिपी रह जाये।

ऐसा नहीं है कि स्त्रियों के जीवन में यह द्वन्द्व केवल मंगल या संस्कार गीतों तक ही सीमित हो। जँतसार श्रम का गीत है। उसका एक संदर्भ नीचे दिया जा रहा है–

"मोरे पिछवरवाँ रे घनी बँसवरिया रे,

जुड़ि जुड़ि आवा थीं बयरिया हो राम।।1।।

जेहि तरा मोर हटि सेजिया विछावैं रे,

आइ न जातू हमरी सुनरिया हो राम।।2।।

कैसे के आवौं हरी तोहरी सेजरिया रे,

सासू घरा बाटीं बड़ी दारूनि हो राम।।3।।[8]

श्रम गीतों में भी स्त्री की यही दारूण दशा दिखाई पड़ती है। गीत की नायिका कह रही है कि घर के पीछे घनी बँसवारी है, जिससे ठंडी हवा आती है। उस बँसवारी के नीचे स्त्री के पति ने शयन का विस्तर लगाया है। स्त्री से कह रहा है कि तुम भी आ जाओ। जवाब में पत्नी कह रही है कि मैं कैसे आ जाऊँ। घर में दारूनि (कर्कसा) सास भी तो है। आप उस समाज की कल्पना कीजिए जहाँ स्त्री–पुरुष रात के अँन्धेरे में भी मिलने के लिए घर–परिवारीजनों के सो जाने की प्रतिक्षा करते हैं। क्या उस समाज में दिन के उजाले में अपनी ही ब्याहता स्त्री से बात कर पाना संभव होगा। आखिर समाज सभ्य होने और प्रगतिगामी होने के बाद भी अभी तक इस बिन्दु पर यहीं क्यों रूका हुआ है। जहाँ ब्याहता स्त्री रात के अन्धेरे में सास–ससुर, ननद, देवरानी–जेठानी के भय और शर्म से अपने पति से नहीं मिल पा रही है। उस समाज में प्रेम करना कितना मुश्किल है।

एक अन्य गीत वहीं से उद्धृत कर रहा हूँ–

"सबकी नगरिया गोविन्दा बँसिया बजायव,

हमरी नगरिया काहे न आयव हो राम।।1।।

कैसे क आवौं सँवली तोहरी नगरिया,

कुकुरा भूकैं पहरू जागै हो राम।।2।।

X X X

चलहु साँवली तू हमरे सँगहिया,

दूनौ जने करबै बिरहवा हो राम।।4।।

कैसे के चलौं गोबिन्दा तुहरे सँगहिया,

बारा होरिलवा कोरवाँ रोवै हो राम।।5।।[9]

यहाँ भी गीत का अर्थ वही ध्वनित हो रहा है। नायिका सम्बोधन में प्रेमी को भक्ति का चादर ओढ़ाकर कह रही है कि, गोविन्द सबकी नगरी में बँसी तो बजाये लेकिन हमारी नगरी में क्यों नहीं आते हो। जवाब मिलता है कि कुत्ते भूँकते हैं और पहरेदार जागता रहता है। नायक या प्रेमी कह लीजिए, प्रेमिका को अपने साथ चलने के लिए कहता है। नायिका बताती है कि उसकी गोद में बच्चा है। वह साथ नहीं जा सकती है। यह प्रेम और परिवार के मध्य द्वन्द्व है। जहाँ एक को पाने के लिए दूसरे का परित्याग करना होगा। प्रेम चुन लीजिए तो परिवार छूट जायेगा। अन्यथा जीवन पारिवारिक जिम्मेदारियों के बोझ तले दबकर ही गुजार देना है। स्त्री का अपना कोई जीवन है ही नहीं।

ऋतुगीतों में भी स्थिति जस की तस ही है। एक सन्दर्भ के साथ बात कुछ साफ हो जायेगी–

"पनिया क गइउँ वहि पनिघटवा हो ना।

राम मेघवा धरेसि मोरि बहियाँ हो ना।।1।।"[10]

स्त्री पनघट पर पानी भरने गयी है। कह रही है कि मेढक ने हमारी बाँह पकड़ लिया। यह प्रकृति और मनुष्य के मध्य प्रेम का औदात्य भी हो सकता है। दूसरा अर्थ किसी स्त्री का घर–परिवार, समाज की निगाह से बच–बचाकर प्रेमी से मिलने का भी ध्वनित होता है। अवध का इलाका जहाँ आज भी दो विपरीत लिंगी व्यक्ति एक–दूसरे से खुलेआम संवाद नहीं कर सकते हैं। वहाँ पनघट, वन, झील–झंखाड़ ही मिलने–मिलाने के मुफीद एकान्त स्थान माने जाते हैं। उन स्थितियों में किसी अन्य व्यक्ति ने देख भी लिया तो कहना पड़ता है कि हम तो अपने जरूरी काम से आये थे।

"पुरुब देस ते आये हैं जोगिया हो ना।

माया जोगिया माँगै थे बसेरवा हो ना।।1।।

जोगिया मोरे घर धेरिया पतोहिया हो ना।

धेरिया पतेहिया लागै मोर बिटियवा हो ना।।2।।

X X X

गुड्डुई तौ खेलै बहिनी सथिनिया हो ना।

बहिनी हम तौर जोगियै चित लावा हो ना।।13।।

आधी रात जोगिया बँसुरी बजावै हो ना।

रामा रैमत क लैगा उढ़ारी हो ना।।14।।''[11]

बहुत से गीतों में सुग्गा या जोगी भी प्रेमी के प्रतीक रूप में आते हैं। यहाँ प्रेमी जोगी के वेष में आया हुआ है। गीत की व्याख्या में संकलनकर्ता ने लिखा है कि आजकल के जोगी, साधु, फकीर किस तरह बहू–बेटियों को घर से निकाल ले जाते हैं यह गीत उसका एक चित्र दिखाता है। लेकिन इस तरह प्रेमी के साथ जाने का मतलब है कि अपनी और प्रमी दोनों की जान खतरे में डालना। यदि जान की परवाह करनी है तो प्रेम के भाव को तिलांजलि देनी होगी।

अवधी क्षेत्र में विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ रात्रि की बेला में नकटा करती हैं। नकटा (नाटक) से लिया गया है। अभिनय के साथ ही साथ गीत भी गाती हैं। जिसका सन्दर्भ नीचे दिया जा रहा है–

''नैना लगाय चला गया आधी रतिया। टेक

ऊँचे भीट पर बोलइ चिरइया,

चितवइ घूरेरी घूरेरी सारी रतिया।।1।। टेक

ऊँचे महल चढ़ि बइठइ सिपहिया,

बोलइ मेल्हाइ मेल्हाइ सारी रतिया।।2।। टेक

छोटे मरद कइ लम्बी मेहरिया,

मारइ लपेट लपेट सारी रतिया।।3।। टेक

नैना लगाय चला गया आधी रतिया।''[12]

नकटा बारात जाने वाले दिन वर पक्ष के घर की स्त्रियाँ रात्रि में करती हैं। जिसमें वे पुरुषों की वेष–भूषा धारण करती हैं। वे अपने गायन और अभिनय में पितृसत्ता को चुनौती पेश करती नजर आती हैं। एक ऐसा समाज जहाँ स्त्रियों को अपनी इच्छा–आकांक्षा व्यक्त करने भर की भी आजादी नहीं देता है। वे पुरुषों की अनुपस्थिति में इस गायन और अभिनय के माध्यम से अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति

करती दिखाई देती हैं। नकटा के इस गीत में नायिका कह रही है कि मेरा प्रेमी मुझसे नेह लगाकर आधी रात को चला गया। ऊँचे टीले पर बैठ कोई पक्षी बोलता है और पूरी रात आँखें गड़ाकर देखता है। इस लोकगीत में ऊँचा महल परिवार समाज की कठोर मर्यादाओं और नैतिकताओं की तरफ संकेत करता है। गीत में जो व्यक्ति आया है वह किसी ब्याहता स्त्री का प्रेमी है, अतः चोर के समान है। इसलिए पूरे गीत में वह चोर के रूप में सम्बोधित किया जा रहा है।

विवाह संस्था से इतर प्रेम–सम्बन्ध और यौन–सम्बन्ध केवल परिवार के बाहर ही नहीं मिलते हैं। परिवार व्यवस्था के भीतर भी इस तरह के सम्बन्धों की मौजूदगी और गुंजाइश लोकगीतों में दिखाई पड़ती है।

इनमें सबसे पहले देवर–भौजाई आते हैं। इस संबंध में दोनों में सामान्यतः उम्र का अन्तराल कम होता है। दोनों एक–दूसरे के राजदार और सहयोगी होते हैं। देवर–भौजाई के मध्य हास–परिहास के गीत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। लेकिन इनके मध्य आकर्षणजन्य सम्बन्धित गीतों की संख्या बहुत कम हैं। देवर और भौजाई के मध्य प्रेमालाप का एक गीत सन्दर्भित किया जा रहा है–

''चारिन खूट हमरे बाबा कइ बखरिआ

अँगनवा बिचवा ना; सोवइँ भउजी अलवेलवा।।1।।

अँगनवा बिचवाना।

बइठ जगावइ लहुरा देवरवा;

उठहु हो भउजी ना; परइ कातिक कई ओसिआ।।2।।

उठहु भउजी ना।

X X X

उठत बइठत बाजइ ऊँगरू घुँघरूँ;

अँचरवा बिचवा ना, बोलइ बन कइ मुरैला।।5।।

अँचरवा विचवा ना।।''[13]

देवर–भौजाई का संग–साथ उठना–बैठना सामाजिक रूप से उतना ही सहज और स्वाभाविक है, जितना कि साग–चौराई का हरा होना। उनका साहचर्य उतना ही चित्त को आकर्षित करने वाला है जितना कि सावन का आँगन में बरसना। इनका आपसी हास–परिहास और छेड़छाड़ का यह सम्बन्ध साहचर्य के नाते स्वाभाविक होता है। लेकिन कब यह आकर्षणजन्य दैहिक सम्बन्ध में बदल जाता है इसे परिवारीजन भी नहीं जान पाते हैं। यहाँ तक कि उन्हें स्वयं भी अपने रिश्ते में बदलाव का कोई सजग–सचेत एहसास नहीं होता है।

देवर–भावज के इस इस तरह के सम्बन्ध पर तो समाज में एक सीमा तक मौन स्वीकृति रहती है। शायद इसीलिए इसे इतना सहज रूप में रचा गया है। इसके उलट जेठ या ससुर अपनी भयहू या बहू को कामुक नजरों से देख भी लें तो समाज में तुरन्त खटकने लगते हैं। लोकगीतों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं–

"अरें रामा जलदी से बेनिया डोलाउ

गरम मोरे लागे रे हरी! टेक

अरे रामा जाइ कहेब मोरे बारे ससुर से;

जलदी से बाँसवा कटाव।।1।।

अरे रामा जाइ कहेब मोरे बारे जेठ से;

जलदी से बाँसवा चिराव।।2।।

गरम मोरे लागे रे हरी।।"[14]

हम सब जानते हैं कि ससुर पूरे परिवार का प्रतीकात्मक मुखिया होता है। जेठ उस परिवार की नई पीढ़ी का वास्तविक संचालक और निर्णयात्मक मुखिया होता है। इस व्यवस्था की सापेक्षता में जेठ और ससुर के साथ बहू के मान्यता प्राप्त सम्बन्धों में परदेदारी का चलन मिलता है। इसलिए लोकगीतों में ससुर–बहू के मध्य प्रेम और यौन सम्बन्धों को लोक साहित्य के अध्येता, पितृसत्ता द्वारा निर्धारित सामाजिक मूल्यों को अभीष्ट मानने वाले, अनुचित ठहरा देते हैं। दरअसल वे लोकगीतों में सामाजिक मूल्यों की हाजिरी जांचने के अन्दाज में लोकगीतों का मूल्यांकन कर रहे होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी– कबीर, पृष्ठ संख्या–261, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
2. सं. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ संख्या–66, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2007
3. पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय, पृष्ठ संख्या–58, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
4. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी भाग–तीन, पृष्ठ संख्या–101, हिन्दी–मन्दिर सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश, 1990
5. वही, पृष्ठ 118
6. वही, पृष्ठ 118
7. वही, पृष्ठ 151
8. वही, पृष्ठ 349
9. वही, पृष्ठ 389–90
10. वही, पृष्ठ 438
11. वही, पृष्ठ 442
12. कृष्णदेव उपाध्याय, अवधी लोक–गीत, पृष्ठ संख्या–65, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद, 1978
13. वही, पृष्ठ 48
14. वही, पृष्ठ 119